Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XI, Issue No. 22, July-2016, ISSN 2230-7540

प्रगतिवाद हिन्दी की साहित्यिक प्रवृत्तियों का विकास

Dr. Asha Tiwari Ojha*

Associate Professor, Department of Hindi, Sunderwati Mahila College, Tilka Manjhi Bhagalpur University, Bihar

सार - ***हिन्दी की प्रगतिवादी आन्दोलन भी अपने पूर्ववर्ती साहित्यिक आन्दोलन 'छायावाद' के बीच से ही निकला है। छायावाद के प्रादुर्भाव काल में भी तमाम तरह के आरोप लगे थे। "छायावाद के जन्मकाल में आचार्यों ने उसे बंगला और अंग्रेजी की जूठन कहकर उसकी व्याख्या करने के कष्ट से बचना चाहा। फिर शैली विशेष कहकर उसे टाल दिया। कुछ समर्थकों ने उसे 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' कहा और कुछ ने 'शिशु कवि के लिए उसे माँ का गोद' बताया।'[1] तथा "अंग्रेजी की रोमांटिक कविता और बंगला में रवीन्द्रनाथ के गीतों से उन्होंने नयी हिन्दी कविता की तुलना की और वे इस नतीजे पर पहुँचे कि उसमें मौलिकता नाम को नहीं है, वह भारतवर्ष की पवित्र भूमि के लिए एक विदेशी पौधा है, जो यहाँ पनप नहीं सकता।"[2] इन सब शकांओं और आशांकाओं को निर्मल करता हुआ, छायावाद भारतीय धरती पर पुष्पित और पल्लवित हुआ। "छायावाद हमारी विशेष सामाजिक और साहित्यिक आवश्यकता से पैदा हुआ और उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उसने ऐतिहासिक कार्य किया। समाज और साहित्य को उसने जिस तरह पुरानी रूढ़ियों से मुक्त किया, उसी तरह आधुनिक राष्ट्रीय और मानवतावादी भावनाओं की और भी प्रेरित किया। व्यक्तित्व की स्वाधीनता, विराट-कल्पना, प्रकृति साहचर्य, मानव-प्रेम, वैयक्तिक प्रणय, उच्च नैतिक आदर्श, देशभक्ति, राष्ट्रीय स्वाधीनता आदि के प्रसार द्वारा छायावाद ने हिन्दी जाति के जीवन में ऐतिहासिक कार्य किया। कविता के रूप-विन्यास को पुरानी संकीर्ण रूढ़ियों से मुक्त करके उसने नवीन अभिव्यंजना प्रणाली के लिए द्वार खोल दिया।'[3]***

----------X----------

छायावाद की तरह प्रगतिवाद पर भी कई तरह के आरोप लगे। जिसमें प्रमुख आरोप विदेशी प्रभाव का होना था। आरोप लगाने वालों में आन्दोलन से जुड़े और उनके विरोधी दोनों तरह के लोग थे। मार्क्सवादी धारा से विरोध करने वालों में प्रमुख रूप से रांगेय राघव, हंसराज रहबर आदि हैं। गैर-मार्क्सवादी धारा से धर्मवीर भारती, रामवृक्ष बेनीपुरी मुख्य रूप से थे। रांगेय राघव का मुख्य आरोप यह था कि प्रगतिवाद हिन्दी में स्वाभाविक रूप से नहीं आया। यह विदेश में पनपा आन्दोलन है जिसे हिन्दी में आरोपित कर दिया गया। उनका मानना था कि- "हिन्दी में इस भावना का विकास विलायत से लौटे हुए उन मध्यवर्गीय या उच्च मध्यवर्गीय युवकों ने किया जो मार्क्सवाद से प्रभावित थे, किन्तु जिनका ज्ञान भारत के विषय में नहीं के बराबर था। वे लोग भारत के इतिहास और संस्कृति को कुछ अंग्रेजी अनुवादों के माध्यम से ही पढ़ सके थे। हम उनके सद् प्रयत्नों को कम करके दिखाने की चेष्टा नहीं कर रहे हैं, वरन् यह बताने का यत्न कर रहे हैं कि प्रारंभ से ही जो नींव पड़ी उसकी ईंट टेढ़ी गिरी और दुर्भाग्य से उसके ऊपर की इमारत भी जरा तिरछी ही उठी।"[4] 'प्रगतिवाद: पुनर्मूल्यांकन' किताब में हंसराज रहबर प्रगतिशील लेखक संघ की बुनियाद को ही प्रश्नांकित करते हैं और इसे देश से लंदन गए कुछ नौजवानों का कार्य मानते हैं। ये "वो नौजवान थे, जो उस समय के यूरोप की राजनीतिक और साहित्यिक विचारधाराओं से प्रभावित थे, जो लंदन में या तो शिक्षा प्राप्त करने गये थे या वहाँ अंग्रेजी में कुछ लिखते-लिखाते अथवा अध्यापन-कार्य करते थे।"[5] आगे वे लिखते हैं- "ये नौजवान देश की परिस्थितियों से अवगत नहीं थे, इसके विपरीत वे यूरोप के सांस्कृतिक और राजनीतिक आन्दोलनों से अधिक प्रभावित थे। यूरोपियन लेखक अपने साहित्य में पश्चिम की समस्याओं का जो हल प्रस्तुत करते थे, वे उसी को भारत की समस्याओं का हल समझते थे।"[6]

गैर मार्क्सवादी धारा से इस आन्दोलन का विरोध करने वालों में रामवृक्ष बेनीपुरी के वक्तव्यों में उनके अंतर्विरोध को देखा जा सकता है। प्रगतिवाद के समबन्ध में उनकी मान्यता है कि "1934 में किसानों और मजदूरों का जो व्यापक आंदोलन हुआ, उसके कोलाहलों में प्रगतिवाद का जन्म हुआ। प्रगतिवाद मरता नहीं किन्तु जिनके हाथों में इसके पालन-पोषण का जिम्मा रहा, उन्होंने पूतना का काम किया-दूध की जगह जहर पिलाया इसे। छायावाद इस ज़मीन की उपज थी। कबीर से लेकर रवीन्द्र तक इसकी परम्परा रही है। प्रगतिवाद को विदेशों से लाकर हमारे यहाँ रोपा गया। रूस से प्रेरणा मिली, लंदन में गर्भाधान हुआ। हिन्दुस्तान में पैदा होकर उसका रंग-रूप हिन्दुस्तानी नहीं

www.ignited.in

हुआ।"[7] एक तरफ बेनीपुरी जी स्वीकार करते हैं कि किसानों, मजदूरों के व्यापक आंदोलन के प्रभाव में प्रगतिवाद का जन्म होता है। वहीं दूसरी तरफ प्रगतिवाद को विदेशों से लाकर रोपा गया कहकर अपनी ही मान्यता का खण्डन करते हुए दिखाई पड़ते हैं। प्रगतिवाद को रूस से प्रेरणा मिली भी तो इसमें हर्ज क्या है? यदि किसी विचार में व्यापक मानव-समुदाय के कल्याण की भावना हो तो उसे स्वीकार करने या उससे प्रेरणा लेना कोई अपराध नहीं है। भले ही वो विचार दुनिया के किसी मुल्क में क्यों न पनपा हो! मनुष्यता के विकास के संदर्भ में विचार सरहदों का भी अतिक्रमण करते हैं।

प्रगतिवाद के ऊपर विदेशी प्रभाव का आरोप लगाते हुए वे कहते हैं- "यहाँ प्रगतिवाद का प्रवेश तब हुआ जब विदेशों में उसका दिवाला पिट चुका था। विदेशों की इस उतरन को हमने बड़े चाव से दौड़कर पहना, जबकि हमारे अपने साहित्य में किसी भी प्रगतिवाद से सौगुना शक्तिशाली प्रवृत्तियाँ पनप रहीं थीं।"[8] प्रगतिवाद पर इसी तरह के आरोप इलाचंद्र जोशी ने भी लगाया है- "हिन्दी साहित्य में प्रगतिशीलता का आंदोलन जोर पकड़ने लगा है। इस प्रगतिशीलता की प्रेरणा हमारे साहित्य के नवयुवक नेताओं को कम्युनिष्टिक रूस से प्रारंभिक युग के साहित्यिक आंदोलन में मिली है।"[9]

हिन्दी में प्रगतिवाद न तो विदेशी उतरन है और न ही रूस की कम्युनिष्ट पार्टी के प्रभाव का नतीजा। हिन्दी साहित्य के विकास प्रक्रिया का एक चरण है। हाँ, इतना जरूर है कि इस चरण में मनुष्य न केवल केन्द्र में आया, बल्कि समाज के शोषित, वंचित, गरीब तबकों की आवाज भी केन्द्रीय आवाज के तौर पर गूँजने लगी। स्वाधीनता आन्दोलन क्रांतिकारी स्वरूप ग्रहण कर रहा था, किसान आन्दोलन की गूँज और धमक, कांग्रेस के अंदर वामपंथ का प्रसार-प्रभाव दोनों का बढ़ना इन सब स्थितियों ने प्रगतिवाद की आधारभूमि को तैयार किया। डॉ. चन्द्रबली सिंह प्रगतिवादी आंदोलन के चरित्र और उसके विकास को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखते हैं और कहते हैं कि "प्रगतिवादी आंदोलन का उदय हमारी राष्ट्रीय स्वाधीनता की लड़ाई के उस दौर में हुआ जब पूँजीवादी नेतृत्व द्वारा निर्धारित सीमाओं को तोड़कर मजदूरों और किसानों के संगठित और वर्ग-चेतन आंदोलन व्यापक और शक्तिशाली होने लगे। उनका संघर्ष विदेशी साम्राज्यवाद से ही नहीं घरेलू पूँजीवादी और सामंतवादी शोषण से भी था। 'अक्टूबर क्रांति' के बाद समाजवादी विचारधारा, जिसका प्रसार अभी तक धीरे-धीरे होता आया था, चौथे दशक में तेज रफ्तार से आगे बढ़ी और उसने हमारे देश के बुद्धिजीवियों और साहित्यिकों को भी प्रभावित किया। इस तरह प्रगतिवादी आंदोलन हमारे राष्ट्रीय जागरण और समाजवादी विचारधारा का संगम था। उसमें दृष्टिकोण की विविधता और वर्ग-चेतना के अनेक रूपों और स्तरों का होना स्वाभाविक था। उसके विभिन्न तत्वों में सहयोग और संघर्ष का होना भी उतना ही स्वाभाविक था। इसी के द्वंद्वात्मक प्रक्रिया के माध्यम से प्रगतिवादी आन्दोलन का विकास हुआ।"[10]

प्रगतिवाद के ऊपर रूसी कम्युनिष्ट पार्टी तथा अन्य विदेशी प्रभाव के हाथ का खण्डन करते हुए डॉ. नामवर सिंह कहते हैं कि "प्रगतिवाद का विरोध करते हुए कुछ लेखक कहते हैं कि यह सर्वथा अभारतीय और विदेशी विचारधारा है क्योंकि एक तो यह मार्क्सवाद पर आधारित है, दूसरे इसका सूत्रपात जिस 'प्रगतिशील लेखक संघ' के द्वारा हुआ, वह फ्रांस के विदेशी वातावरण में स्थापित हुआ था और अब भी वह उस कम्युनिष्ट पार्टी द्वारा संचालित होता है जिसकी लगाम सोवियत रूस के हाथ में है। लेकिन हिन्दुस्तान के अनगिनत लेखकों और पाठकों ने प्रगतिशील साहित्य को अपनाकर इसकी भारतीयता प्रमाणित कर दी है और इस तरह उन्होंने तमाम विरोधी आलोचकों को मुँहतोड़ जबाव दिया है। इसलिए प्रगतिवाद की भारतीयता और अभारतीयता को लेकर बहस करना अब बेकार है। फिर भी लोगों की तुष्टि के लिए उस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की और संकेत किया जा सकता है, जिसके अनिवार्य परिणामस्वरूप प्रगतिवाद पैदा हुआ।"[11] आगे प्रगतिवाद के आगमन के स्वाभाविक विकास प्रक्रिया को दिखलाते हैं और तमाम आरोपों का जबाव देते हैं- "यदि प्रगतिवाद की माँ मार्क्सवाद ही है तो हिन्दी में प्रगतिवाद का जन्म उन्नीसवीं सदी में ही हो जाना चाहिए था क्योंकि उस समय यूरोप में मार्क्सवाद की धूम मची हुई थी और हिन्दुस्तानी लोग तक यूरोप के सम्पर्क में अच्छी तरह आ गये थे, लेकिन वास्तविकता यह है कि हिन्दी में प्रगतिवाद पैदा हुआ 1930 ई0 के बाद। इसका साफ मतलब है कि प्रगतिवाद हिन्दी में अपने समय पर ही पैदा हुआ-ऐसे समय जब हिन्दी जाति और साहित्य की जमीन उसके अनुकूल तैयार हो गयी थी।"[12]

प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हो या प्रगतिशील आंदोलन की ऐतिहासिक भूमिका की चर्चा उस पर आरोप-प्रत्यारोप का दौर चलता रहेगा। इन सबके बीच हमें उसका मूल्यांकन करना होगा और उसके उपलब्धि को रेखांकित करना होगा। डॉ. रेखा अवस्थी कहती हैं-"इतिहास व्यक्तियों की इच्छा से स्वतंत्र होता है। प्रगतिशीलता की भावना का उद्भव हिन्दुस्तान की अपनी परिस्थितियों, जन आंदोलनों, ब्रिटिश हुकूमत के दमनचक्र के विरूद्ध समाजवादी विचारधारा के तेजी से प्रसार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के हनन की प्रतिक्रिया आदि कारणों से हुआ। 1929 के बाद हिन्दुस्तान की परिस्थितियों में और जनता की आत्मगत चेतना में क्रांतिकारी परिवर्तन होने लगे थे। भारतेन्दुकालीन यथार्थवादी रूझान के विकास तथा देश की

www.ignited.in

परिस्थितियों के प्रति संवेदनशील रचनाकारों की ईमानदार प्रतिक्रियाओं से जो यथार्थवादी साहित्य जन्म ले रहा था, प्रगतिवाद उसी का सुसंगत ऐतिहासिक विकास है।''[13]

प्रगतिवादी आंदोलन में सब कुछ यकायक यों ही नहीं हो गया बल्कि इसके पीछे भारतीय जनता का अथक संघर्ष जुड़ा था। नई वैज्ञानिक चेतना से लैश और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दमनकारी नीतियों के खिलाफ आम जनता तक में व्याप्त गुस्सा था। देश और व्यक्ति की स्वाधीनता का प्रश्न अब केन्द्र में आ गया था। नए राजनीतिक विचार ने इसके प्रसार को और तेज कर दिया। राजनीति के साथ-साथ साहित्य में भी परिवर्तन होने लगे थे। जो कवि लेखक 'कल्पना के कानन की रानी' और 'आकाश कुसुम' में विचर रहे थे, उन्होंने यथार्थ के कड़वेपन का स्वाद चखा और अपनी रचनाओं में मनुष्य के संघर्षों, उसकी जिजीविषा एवम् उनके यथार्थ को रेखांकित करने का प्रयास किया। राजनीति एवम् साहित्य दोनों मोर्चों पर विचारधारात्मक संघर्ष तेज होने लगे। स्वाधीनता संग्राम की लड़ाई 'असहयोग' से काफी आगे बढ़ चुकी थी। विश्व-स्तर पर लेनिन के नेतृत्व में समाजवादी क्रांति सोवियत रूस में घटित हो चुकी थी। इसका व्यापक प्रभाव हमारे स्वाधीनता आन्दोलन पर पड़ा। ''भारत में प्रगतिशील आंदोलन के उदय का काल ऐसा था जिसमें अंतर्राष्ट्रीय घटनाएँ राष्ट्रीय जीवन और चिंतन को गहरे प्रभावित कर रही थीं, मानव का ज्ञान और संवेदना भौगोलिक सीमाएं तोड़ रहे थे, यहां तक कि स्वयं हमारा राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम मूलतः राष्ट्रीय होते हुए भी एक व्यापक अंतर्राष्ट्रीय जागृति का हिस्सा बन गया था।''[14] प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान व्यापक पैमाने पर हुई हिंसा ने विश्व समुदाय को सोचने पर मजबूर कर दिया। भविष्य में इन घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो इसके लिए विभिन्न विकल्पों की खोज होने लगी। इसी क्रम में '1919 में विश्वप्रसिद्ध लेखक रोमा रोलां की पहल पर विश्व के अनेक महत्वपूर्ण बुद्धिजीवियों ने 'विचारों की स्वतंत्रता की घोषणा' नाम से एक हस्ताक्षरित वक्तव्य जारी किया। जिस पर रोमां रोलां के अतिरिक्त मैक्सिम गोर्की, हेनरी बार्बूस, बट्ररन्ड रसल, अप्टन सिंक्लेयर, स्टीफन ज्वीग आदि के हस्ताक्षर थे। भारत से रवीन्द्रनाथ टैगोर और ए. कुमारस्वामी ने भी इस घोषणा पर हस्ताक्षर किये थे। 12 अगस्त 1921 को कम्युनिष्ट इन्टरनेशनल की पहल पर बर्लिन में एक संगठन बनाया गया जिसकी अध्यक्षा क्लारा जेटकिन थी। इसकी समिति में अल्बर्ट आइंस्टीन, बर्नार्ड शा, अनातोले फ्रांस, हेनरी बार्बूस और मार्टिन एंडरसन निक्सो जैसे ख्यात बुद्धिजीवियों के नाम थे। दिसंबर, 1923 में अंतर्राष्ट्रीय शांति कांग्रेस हुई। फरवरी, 1923 में क्लारा जेटकिन, फ्रिज हैबर्ट और हेनरी बार्बूस के नेतृत्व में एक फासिज्म और युद्ध विरोधी संघर्ष समिति की स्थापना की गई। फरवरी 1926 में ही विभिन्न साम्राज्यवाद-विरोधी संगठनों के प्रतिनिधियों ने बर्लिन कांफ्रेस में उपनिवेशी शोषण के विरूद्ध एक लीग का निर्माण किया। उन्होंने साम्राज्यवाद और उपनिवेशी शोषण के विरूद्ध एक कांग्रेस आयोजित करने का भी निर्णय लिया जो फरवरी, 1927 में ब्रसेल्स में हुई।''[15]

जवाहर लाल नेहरू कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में ब्रसेल्स पहुँचे थे। कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में अपने विचार रखते हुए जवाहर लाल नेहरू जी ने कहा कि- ''मैं चाहता हूँ कि आप यह बात समझें कि हिन्दुस्तान की समस्या सिर्फ एक मुल्क की समस्या नहीं है, बल्कि इसका असर बहुत से मुल्कों पर सीधा और सारी दुनिया पर अप्रत्यक्ष रीति से पड़ता है क्योंकि इसका असर हमारे जमाने के एक सबसे ज्यादा ताकतवर साम्राज्य पर पड़ता है। जाहिर है कि हिन्दुस्तान में ऐसी हालत हमारे बर्दाश्त से बाहर की बात है। हम इस हालत में हमेशा नहीं रह सकते और सिर्फ इसलिए नहीं कि आजादी अच्छी चीज है और गुलामी एक बुरी बात है, बल्कि इसलिए कि हमारे और हमारे देश के लिए यह जिंदगी और मौत का सवाल है। यह नहीं, यह आपके लिए भी बर्दाश्त के बाहर की बात है। आप लोग भी जो यहाँ जुदा-जुदा मुल्कों से, धरती के कोने-कोने से, यहाँ आये हैं, अपनी आजादी पर लगे इन भारी बंधनों को बर्दाश्त नहीं कर सकते। अंग्रेजों द्वारा हिन्दुस्तान का शोषण, मैं कहना चाहता हूँ, उन दूसरे मुल्कों पर भी एक बोझ है, जिनको दबाया जा रहा है और जिनका शोषण किया जा रहा है।''[16] ब्रसेल्स से लौटने के बाद नेहरू जी ने एक विस्तृत रिपोर्ट कांग्रेस को भेजी। ''बम्बई महासमिति की बैठक में साम्राज्यवाद-विरोधी परिषद् के प्रश्न पर विचार हुआ।''[17] साथ ही ''महासमिति ने जवाहर लाल जी की सेवाओं की मुक्त-कंठ से प्रशंसा की और साम्राज्यवाद विरोधी संघ के प्रयत्न को भी सराहा।''[18]

''सम्पूर्ण विश्व के प्रगतिशील बुद्धिजीवियों और संगठनों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर किए जा रहे इन प्रयासों का उद्देश्य जहां एक और साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिए चल रहे स्वाधीनता आंदोलनों को संगठित करना था तो साथ ही उभरते फाँसीवाद को रोकना भी था।''[19] अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चल रहे इन प्रयासों में 1934 के अगस्त में 'सोवियत लेखक कांग्रेस' का आयोजन महत्त्वपूर्ण है। इस आयोजन में सोवियत रूस की विभिन्न भाषाओं के लेखकों के साथ-साथ विश्व के अन्य देशों से आये लेखकों ने भी हिस्सा लिया। मैक्सिम गोर्की, कार्ल रोडक, निकालोई बुखारिन, ए0आई0 स्टेट्रस्की जैसे महत्त्वपूर्ण लेखकों ने अपने लेख प्रस्तुत किए। ''सोवियत लेखकों की यह कांग्रेस साहित्यिक सांस्कृतिक स्तर पर प्रगतिशील लेखकों के संगठन की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम था, जिसने प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी लेखन के बीच अंतर को स्पष्ट किया, विश्व

साहित्य में प्रचलित विभिन्न प्रवृत्तियों का गंभीर विश्लेषण किया, साहित्य को व्यापक जनसमूह से प्रतिबद्ध करने के सांगठनिक प्रयासों की जरूरत पर बल दिया, समाजवादी यथार्थवाद का नारा दिया और विश्व के लेखकों का आह्वान किया कि वे भी उस दृष्टिकोण और पद्धति को अपनाएँ।''[20]

इसके बाद जून 1935 में पेरिस में 'अंतर्राष्ट्रीय लेखक संघ' की स्थापना होती है। इसमें मैक्सिम गोर्की, आंद्रेजीद, ई0एम0 फॉस्टर, थामस मान आदि महत्त्वपूर्ण लेखकों का गंभीर एवम् महत्त्वपूर्ण प्रयास था। इसमें विचार की स्वतंत्रता, फास्जिम से रक्षा और उत्पीड़ित राष्ट्र के समर्थन में खड़े होने की बात की गई। इसी बीच स्पेन में गृहयुद्ध छिड़ गया। स्पेन का गृहयुद्ध इस अर्थ में विशिष्ट हो गया कि इसमें लेखक एक तरफ जनचेतना के निर्माण के लिए लेखन को हथियार बनाए हुए थे तो दूसरी तरफ बंदूक के साथ गृहयुद्ध में सिपाही की तरह मोर्चा लिए थे। 1937 में मैड्रिड में फाँसीवाद-विरोधी लेखकों का सम्मेलन हुआ। ''न्यू कण्ट्री' और 'लेफ्टरिव्यू' में प्रकाशित डे लेविस, अपवर्ड, स्पेण्डर सदृश नौजवान लेखकों ने कर्म की समस्या पर बहस की थी। इस बहस में ऐसे मुद्दे उठे थे कि 'क्या साहित्य व क्रान्ति परस्पर विरोधी हैं? क्या उद्देश्य हेतु कार्य करने के लिए लेखन छोड़ देना चाहिए? क्या कविता कार्रवाई है? इस बहस पर हमेशा दूरागत दिन की छाया रहती थी, जबकि प्रश्नों के उत्तर घटना में मिलने वाले थे, जबकि संघर्ष वास्तविक और हिंसक रूप लेने वाला था। स्पेन में इसकी शुरूआत हो गयी थी और कला एवम् कर्म के बीच चुनाव साहित्यिक बहस के मुद्दे की बजाय यथार्थ का प्रश्न बन गया था।''[21] इस युद्ध में कॉर्नफोर्ड, फॉक्स, कॉडवेल मारे जाते हैं। ऑडेन की प्रसिद्ध युद्ध संबंधी कविता 'स्पेन' इसी युद्ध क्षेत्र की यात्रा के बाद लिखी गई। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चल रही गतिविधियों का प्रभाव भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन पर पड़ना अवश्यमभावी था। सोवियत रूस में लेनिन के नेतृत्त्व में समाजवादी क्रांति के बाद उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और फाँसीवाद के विरूद्ध पूरी दूनिया में एक बहस चल रही थी। तीसरी दुनिया के देशों में स्वाधीनता का प्रश्न अब केन्द्रीय माँग बन गई थी। ''आज का हिन्दुस्तान एक बहुत ही व्यापक आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्रांति के युग में प्रवेश कर रहा है। इस क्रांति की पहली मंजिल विदेशी शासन से मुक्ति पाना और पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना है।''[22] ''1914-18 के पहले महायुद्ध से, और उसके बाद सारी दुनिया पर जो क्रांति की लहर छा गई थी, उससे दूसरे सभी उपनिवेशों की तरह हिन्दुस्तान में भी बड़े-बड़े परिवर्तनों का युग आरंभ हुआ। 1919-22 में बड़े-बड़े जन-आंदोलनों से भारत हिल उठा और विश्वव्यापी आर्थिक संकट के बाद जिसका हिन्दुस्तान पर बहुत जबरदस्त असर पड़ा, 1930-34 में और भी जोरों से जन-आंदोलन की लहर आई।''[23] जन-आंदोलन के बाद आई जागृति ने स्वाधीनता आंदोलन को नया स्वरूप दिया। अब, पहले से ज्यादा मुखर और ताकत के साथ अपनी माँगें रखी जाने लगी। इन माँगों में मुख्य माँग थी पूर्ण स्वाधीनता और साम्राज्यवाद विरोध।'' इस आंदोलन के ध्येय और उसकी कार्य-प्रणाली में बराबर प्रसार होता रहा है। पहले महायुद्ध के बाद राष्ट्रीय आंदोलन ने जनता को साथ लेना शुरू किया और पूर्ण स्वायत्त शासन की माँग की।''[24] 26 जनवरी 1930 को पूर्ण स्वराज्य दिवस मनाने की घोषणा हुई, साथ ही एक घोषणा-पत्र भी तैयार किया गया जिसमें पूर्ण स्वराज्य की माँग प्रमुख था।'' हम भारतीय प्रजाजन भी अन्य राष्ट्रों की भांति अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं कि हम स्वतन्त्र होकर रहें, अपने परिश्रम का फल हम स्वयं भोगें और हमें जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक सुविधायें प्राप्त हों जिससे हमें भी विकास का पूरा मौका मिले। हम यह भी मानते हैं कि यदि कोई सरकार ये अधिकार छीन लेती है और प्रजा को सताती है तो प्रजा को उस सरकार के बदल देने या मिटा देने का भी अधिकार है। अंग्रेजी सरकार ने भारतवासियों की स्वतन्त्रता का ही अपहरण नहीं किया है बल्कि उसका आधार भी गरीबों के रक्त शोषण पर है और उसने आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भारतवर्ष का नाश कर दिया है। अतः हमारा विश्वास है कि भारतवर्ष को अंग्रेजों से सम्बन्ध विच्छेद करके पूर्ण स्वराज्य या स्वाधीनता प्राप्त कर लेनी चाहिए।''[25]

इसी दौरान देश में क्रांतिकारी युवाओं की गूँज सुनाई देने लगती है। इन युवाओं के अंदर कांग्रेस से जो उम्मीद आम जनता को थी, वो नहीं था। समाजवादी-वामपंथी विचारों का प्रभाव युवाओं पर पड़ रहा था और विकल्प की तलाश में उन लोगों ने समाजवादी विचारधारा को अपनाया। कांग्रेस के अंदर भी वामपंथी विचारधारा को मानने वाले की संख्या बढ़ रही थी। ''जवाहरलाल और सुभाष ने पूर्ण स्वाधीनता के लक्ष्यों को स्वीकार करवाने के लिए कांग्रेस के भीतर ही एक दबाव-समूह के रूप में इंडिपेंडेंस फॉर इंडिया लीग की स्थापना की। इस लीग की संयुक्त प्रांत शाखा ने अप्रैल 1929 में 'समाजवादी जनतांत्रिक राज्य' की बात कही जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को विकास के पूरे अवसर होंगे.....(जिसमें) उत्पादन के साधनों एवम् वितरण पर राज्य का नियंत्रण होगा।''[26]

कांग्रेस के अंदर वामपंथी, समाजवादी धुरी का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। समाजवादी भारत का सपना, पूर्ण स्वाधीनता की माँग उस व्यापक जन असंतोष के उम्मीदों का प्रतिफलन था, जो गाँधी के द्वारा अचानक आंदोलन को स्थगित करने के बाद उभर रहा था। सितम्बर 1920 में कलकत्ता कांग्रेस ने असहयोग आंदोलन की योजना पास की। इस आंदोलन के प्रस्ताव में यह

www.ignited.in

नीति घोषित की गई कि "जब तक ऊपर कही हुई अन्याय की बातें दूर नहीं की जातीं और स्वराज्य कायम नहीं होता, तब तक महात्मा गाँधी का चलाया हुआ 'असहयोग आंदोलन' बढ़ता रहेगा।"[27] किन्तु गाँधी जी के इस आंदोलन के कार्यक्रमों और नीतियों का विरोध उसी दौर में शुरू हो गया। तिलक के एक साथी गणेश श्रीकृष्ण खापड़े ने इस कार्यक्रम के नीतियों की आलोचना की। उन्होंने कहा कि कलकत्ता कांग्रेस के प्रस्ताव, कांग्रेस की शक्तियों को आत्मबल व नैतिक श्रेष्ठता प्राप्त करने की दिशा में तो ले जाते हैं, लेकिन प्रश्न के राजनैतिक पहलू को बिलकुल भुला देते हैं।.... असहयोग का आंदोलन सहनशक्ति को बढ़ाने में सहायक हो सके यह सम्भव है, लेकिन वह हमारे अन्दर वह कार्य-शक्ति, सहनशीलता व व्यावहारिक चातुर्य पैदा करने में असमर्थ है, जो एक राजनैतिक आन्दोलन के लिए आवश्यक है। कांग्रेस ने जिन तीन बहिष्कारों की सिफारिश की है, वे बेकार हैं और उनमें सुदूर राजनैतिक दृष्टि का अभाव है। आल इण्डिया होमरूल-लीग (जो अब स्वराज-सभा के नाम से जानी जाती है) के ध्येय को बदलते समय जो विवाद व कार्रवाई हुई उसे देखने से प्रतीत होता है कि अब सारा झुकाव फिर एकतन्त्र व व्यक्तिगत सत्ता की और है। चाहे यह सत्ता एक बहुत ही बढ़े-चढ़े व नीतिवान् व्यक्ति को क्यों न दी जाए, है आपत्तिजनक और समय की स्पिरिट के विरूद्ध"[28] असहयोग आंदोलन की नीतियों पर इतनी तीखी टिप्पणी उस समय किसी ने नहीं किया था।

1921 के अंत तक पूरे भारत में असहयोग की लहर फैल गई। अंग्रेजी हुकूमत देश की हालत से परेशान हो, इस आंदोलन को खत्म करने के प्रयास में लग गई। दूसरी ओर आंदोलन पूर्वी भारत से पश्चिमी भारत तक फैलता गया। असम-बंगाल में रेल हड़ताल हुई, दक्षिण मालाबार में मोपला-विद्रोह, पंजाब में सरकारी पिट्ठू के खिलाफ अकाली आंदोलन चले। आंदोलन अखिल भारतीय स्वरूप ग्रहण कर रहा था और भारतीय जनता इस आंदोलन के सहारे अंग्रेजी हुकूमत से मुक्ति के सपने देख रही थी और पूर्ण स्वराज्य भी मिलता दिख रहा था, तभी संयुक्त प्रांत के चौरी-चौरा गाँव के एक थाने पर किसानों के हमले में 22 पुलिस वालों की हत्या हो जाती है और 12 फरवरी को बारदोली में कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक बुलाकर सत्याग्रह आंदोलन को बंद करने की घोषणा कर दी जाती है। अचानक इस तरह आंदोलन को खत्म करने की घोषणा ने भारतीय जनाकांक्षाओं के पर काट दिए, उनके द्वारा देखे सपने टूट गए। कांग्रेस के भीतर सुभाष, मोतीलाल नेहरू, लाजपत राय आदि नेताओं ने इसकी तीव्र निंदा की।

आंदोलन के इस तरह खत्म होने से गहरी हताशा और निराशा का भाव भारतीय जनता और कांग्रेस के भीतर बना रहा। हताशा और निराशा के इन क्षणों में भारत में युवा क्रांतिकारी आंदोलन के साथ-साथ मजदूरों एवम् किसानों का संघर्ष उभार पाता है। किसान आंदोलन के उभार में जमींदारी व्यवस्था एक प्रमुख कारण था। इसके कारण बेदखली, जबरिया, वसूली, लगान आदि कड़ाई से ली जाती थी, जो किसानों के असंतोष को उभारने के लिए पर्याप्त था। इस असंतोष को ज्यादा व्यापक और संगठित होने में अंग्रेजों और जमींदारों की साम्राज्यवादी एवम् सामंतवादी रवैया था। इनकी आर्थिक नीतियों के कारण किसान लगभग बेगार की स्थिति में पहुँच गए थे। ये बेगारीपन किसानों को लगभग गुलामों की स्थिति में लाकर छोड़ देता था। तत्कालीन परिस्थिति का चित्रण सखाराम गणेश देउस्कर ने इस प्रकार किया-"मुझे कहते हुए दुःख होता है कि बक्सर के आगे बनारस की और हरेक गाँव को मैंने एकदम उजाड़ पाया।.....वहाँ की शासन प्रणाली बिगड़ गई है, लोगों पर अत्याचार हो रहे हैं, वाणिज्य का नाश हो गया है और खेती की जड़ ही नष्ट हो जाने के कारण राजस्व की वसूली शीघ्र ही कम हो जाने का डर है। अंग्रेजों के हाथ इस प्रदेश के पड़ते ही यह स्वर्णभूमि इस प्रकार श्मशानभूमि हो गई। बेचारे किसान हर तरह से मारे गए।"[29] 1930 तक आते-आते किसानों में पर्याप्त समझ विकसित हो गई थी। अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना हो गई थी। वामपंथी विचारधारा वाले समूहों के द्वारा किसानों और मजदूरों को संगठित किया जाने लगा था। नवम्बर 1929 में बिहार प्रान्तीय किसान सभा का गठन हुआ और सहजानन्द सरस्वती इसके अध्यक्ष चुने गए। नवम्बर 1935 में हाजीपुर में आयोजित बिहार प्रान्तीय किसान सभा के तीसरे सम्मेलन के अध्यक्षीय वक्तव्य किसान सभा बनाम कांग्रेस था। कांग्रेस से इतर किसान-सभा की क्या जरूरत है? क्या इससे कांग्रेस कमजोर होगी? इसके जबाव में सहजानन्द सरस्वती कहते हैं- "कांग्रेस राष्ट्रीय संस्था है, वर्गीय नहीं, इसलिए हर वर्ग को अपने हितों की देखभाल करने वाला अलग संगठन बनाना चाहिए। दूसरे पूँजीपतियों, जमींदारों और मजदूरों के कांग्रेस से अलग संगठन मौजूद है। हालांकि उनमें कांग्रेसियों का बहुमत ही है।[30] "ऐसी हालात में केवल किसानों का ही पृथक संगठन क्यों न हो, यह समझ में नहीं आता।"

"हिन्दी क्षेत्र में किसान आंदोलन वर्गीय मुक्ति और राष्ट्रीय मुक्ति के मसौदों को एक साथ लेकर चले। चंपारन, बिजौलिया, अवध, युक्तप्रांत और बिहार में किसान आंदोलनों का स्वरूप, कार्यक्रम, संगठन और विचारधाराएँ भिन्न होने के बावजूद मुक्ति का लक्ष्य वर्गीय और राष्ट्रीय दोनों था। बिहार में स्थाई बंदोबस्त था। अवध में अस्थायी बंदोबस्त था। राजस्थान में बिजौलिया और अन्य इलाकों में रजवाड़ों की पुरानी किस्म की सामंती संरचना के साथ ब्रिटिश जमींदारी ढाँचा भी जुड़ गया था। नाजायज लगान, बेदखली, लागबाग, बेगारी, शारीरिक,

मानसिक हिंसा, स्त्री किसानों का शोषण, खेतिहर मजदूरों एवम् शिल्पकारों का शोषण, कर्ज, सूदखोरी, मुकदमेबाजी आदि ऐसे दमनकारी रूप थे जिन्होंने हिन्दी क्षेत्र में 1917-47 के बीच भीषण किसान आंदोलनों को जन्म दिया।''[31]

किसान आंदोलन के साथ ही क्रांतिकारी आंदोलन का प्रसार तेजी से हो रहा था। असहयोग आंदोलन के असमय स्थगित करने के गाँधी जी के फैसले के कारण कांग्रेस नेतृत्व के प्रति जनता का मोहभंग होने लगा। बंगाल में पंजाब तक के युवा क्रांतिकारी आंदोलन के प्रति न केवल आकर्षित हो रहे थे बल्कि उसमें उनकी हिस्सेदारी भी बढ़ गई। काकोरी काण्ड, साइमन कमीशन, सौंडर्स की हत्या, लाजपतराय की मृत्यु, अस्मेबली बमकाण्ड, सुखदेव, भगतसिंह, राजगुरु को फाँसी, इन घटनाओं ने देश को हिलाकर रख दिया था। क्रांतिकारी आंदोलन की इस धारा ने गाँधीवादी अहिंसात्मक आंदोलन के वर्चस्व को चुनौती दी। इसका प्रभाव स्वाधीनता आंदोलन पर तो पड़ा ही, कांग्रेस के अंदर भी इसका असर देखा गया। अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ी जा रही लड़ाई के केन्द्र में कांग्रेस और गाँधी के बरक्स भगत सिंह और उन जैसे अनेक युवा जो क्रांतिकारी आन्दोलनों में अपनी आस्था रखते थे के द्वारा भी लड़ी जाने लगी। इन दोनों धाराओं का लक्ष्य एक था- स्वाधीनता, लेकिन रास्ते अलग थे। गाँधी अहिंसा के रास्ते से उसे पाना चाहते थे और क्रांतिकारी दल का रास्ता हिंसा था। दोनों समूहों में इसी कारण विचारधारात्मक टकराव देखने को मिलते है।

गाँधी जी ने क्रांतिकारियों के द्वारा वायसराय की गाड़ी को बम से उड़ाने के असफल प्रयास की निंदा 'बम की पूजा' लेख में करते हैं। गाँधी जी के इस रूख का विरोध करते हुए भगत सिंह ने 26 फरवरी 1930 को 'बम का दर्शन' लेख लिखा। इसमें कांग्रेस और गाँधी जी की अहिंसा की नीति की आलोचना करते हुए कहते हैं- ''अब तक अहिंसा को एक ही आशीर्वाद मिला है वह है असफलता का.... वास्तव में गाँधी जी जिस रूप में सत्याग्रह का प्रचार करते हैं, वह एक प्रकार का आंदोलन है, विरोध है, जिसका स्वाभाविक परिणाम समझौते में होता है। कोई भी व्यक्ति अहिंसा और ऐसे ही अजीबोगरीब तरीके से मनोवैज्ञानिक प्रयोग कर राष्ट्र की स्वतंत्रता के साथ खिलवाड़ न करें।''[32] आगे क्रांति के रास्ते के बारे में लिखते हुए कहते हैं- 'हमारा दृढ़ विश्वास है कि जिस ढंग से देश में क्रांति लाई जा सके उसके लिए अपनाए गए हर प्रयास और अपनाए गए सभी ढंग नैतिक स्तर पर सही है।'

अंतर्राष्ट्रीय हलचल और स्वाधीनता आन्दोलन के नए दौर की घटनाओं ने भारतीय समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन किए। 'छायावाद' के अंदर से ही स्वाधीनता आंदोलन में हो रहे परिवर्तन को देखा जा सकता है।

संदर्भ-ग्रन्थ

1. शर्मा, रामविलास, भाषा, युगबोध और कविता, पृ.-178, वाणी प्रकाशन, तृतीय संस्करण- 2010, नई दिल्ली
2. वही, पृ.-178
3. सिंह, नामवर, छायावाद, पृ.-151-152, राजकमल प्रकाशन, पाँचवी आवृत्ति-2003, नई दिल्ली
4. राघव रांगेय, प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड, पृ.-7, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, प्रथम संस्करण-1954
5. रहबर, हंसराज: प्रगतिवाद पुनर्मूल्यांकन, पृ.-13, विभूति प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, द्वितीय संस्करण-1981
6. वही, पृ.-17
7. जनवाणी, 1948
8. भारती, धर्मवीर:, प्रगतिवाद: एक समीक्षा, पृ.-14, साहित्य भवन, लिमिटेड, प्रयाग, प्रथम संस्करण-1949
9. विशाल भारत, नवम्बर, 1938
10. सिंह, चंद्रबली, आलोचना का जनपक्ष, पृ.- 225-226, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2003
11. सिंह, नामवर, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, लोकभारती, प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण- 2005, पृ.-61
12. वही, पृ.-11-12
13. अवस्थी, रेखा, प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण-1978, पृ.-18
14. चौहान कर्ण सिंह, प्रगतिवादी आंदोलन का इतिहास प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली- संस्करण-1998, पृ.-2
15. प्रधान सुधी - 'मार्क्सवाद कल्चरल मूवमेंट, नेशनल बुक एजेंसी, कलकत्ता, 1979, भूमिका, पृ.-6, (कर्ण सिंह चौहान की किताब प्रगतिवादी आंदोलन का इतिहास, पृ.-2-3 से)

www.ignited.in

16. देव, अर्जुन (सं.), जवाहरलाल नेहरू: संघर्ष के दिन, चुने हुए वक्तव्य नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, संस्करण-1996, चौथी आवृत्ति-2005, पृ. -264

17. सीतारामय्या, डॉ. बी. पट्टाभि, कांग्रेस का इतिहास, खण्ड-I सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, संस्करण-2009, पृ.-251

18. वही, पृ.-251

19. चौहान, कर्ण सिंह, प्रगतिवादी आंदोलन का इतिहास प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण- 1998, पृ.-4

20. चौहान कर्णसिंह, प्रगतिवादी आंदोलन का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण- 1998, पृ.-6

21. आलोचना-77, 1986, पृ. - 28

22. पामदत्त रजनी, आज का भारत, (अनु.)-रामविलास शर्मा, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2000, पृ0-24

23. वही, पृ0-24

24. वही, पृ0- 34

25. कांग्रेस का इतिहास-खण्ड-I, डॉ. बी. पट्टामि सीतारामय्या सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, संस्करण-2009, पृ0-288

26. सरकार, सुमित आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1993, बारहवीं आवृत्ति-2005, पृ0- 287

27. पामदत्त रजनी, आज का भारत, (अनु.)-रामविलास शर्मा, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-2000, पृ0-313

28. सीतारामय्या, डॉ. बी. पट्टामि कांग्रेस का इतिहास, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, संस्करण-2009, पृ0-160

29. देउस्कर, सखाराम गणेश, देश की बात, पृ0-80, (अनु0-बाबूराव विष्णु पराड़कर), आवृत्ति, 2010 नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली

30. प्रधान, अवधोश, स्वामी सहजानन्द सरस्वती और उनका किसान आंदोलन, नई किताब, संस्करण-2011, पृ0-48

31. अभिनव कदम, अंक-26, पृ0-496

32. सिंह भगत; बम का दर्शन और अदालत में बयान, पृ. 11, दूसरा पुनर्मुद्रण, सितम्बर-2011, राहुल फाउण्डेशन लखनऊ

Corresponding Author

Dr. Asha Tiwari Ojha*

Associate Professor, Department of Hindi, Sunderwati Mahila College, Tilka Manjhi Bhagalpur University, Bihar